पर्यावरण शिक्षा का जीवन में महत्व

कृपा शंकर यादव

शोधछात्र (शिक्षाशास्त्र)
शिक्षक–शिक्षा विभाग
नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय),
प्रयागराज

पर्यावरण की अवधारणा बहुत प्राचीन है। भारतीय मनीषियों ने इस अवधारणा का मूल्यांकन हजारों वर्ष पूर्व किया था। प्रकृति और जीव के अंतर्संबंधों का जन–जन को बोध कराने के लिए विविध प्रतीकों के रूप में इन्हें धर्म, सामाजिक नियम आरै आचरण में समाहित कर दिया था। यहीं कारण है कि हजारों वर्ष तक यह संबंध मित्रवत् चलता रहा। लेकिन आधुनिकता के आवेश में पुरानी परंपरा और आचरण को नकार दिया गया, इससे प्रकृति और जीव के संबंध बिगड़ने लगे और बाध्य होकर सोचना पड़ा कि ऐसा क्यों घटित हो रहा हैं। पर्यावरण संकट बहुत तेजी से गहराता जा रहा है। आज पूरा विश्व यदि किसी समस्या को लेकर चिंतित है तो वह पर्यावरण की समस्या हैं। विकास की अंधी दौड़ में मनुष्य को यह ज्ञान तक नहीं हुआ कि वह विनाश की ओर भी तेजी से भाग रहा है। ऊर्जा की अंधाधुंध खपत, वनों की बेशुमार कटाई, अनायास बढ़ती जनसंख्या, तेजी से फैलता हुआ प्रदूषण और पृथ्वी के संसाधनों का निर्मम शोषण आदि ने प्रकृति और मनुष्य के बीच का सारा संतुलन गड़बड़ा दिया हैं। प्रकृति पर विजय की लालसा ने मनुष्य को इतना निष्ठुर बना दिया कि वह उसके विनाश पर ही तुल गया – कालीदास की तरह, जिस टहनी पर बैठा था, उसे ही काटने लगा। मानव जीवन की कुछ आधारभूत वस्तुओं यथा वायु, जल, मृदा आदि की गुणवत्ता में ह्रास ने यह सोचने के लिए बाध्य किया है कि पर्यावरण का आक्रमण परिस्थितियों को बिगाड़ रहा है। यदि पारिस्थितिकी इस तरह नष्ट होती रही तो संपूर्ण जैव जगत का जीवन संकटमय हो सकता है और अंततः महाविनाश भी हो सकता है। स्पटतः पारिस्थितिकी गुत्थियों को समझना और उनके समाधान के लिए उपाय ढूँढ़ना आज की सामयिक आवश्यकता है। आधुनिकता के नाम पर मनुष्य ने अपनी भौतिक स्वार्थ की पूर्ति के लिए पर्यावरण पर लगातार चोट पहुँचाई, पर्यावरण की अवमानना उसकी आदत सी बन गयी। प्रकृति विजय का स्वप्न देखते–देखते वह भूल गया कि मनुष्य भी प्रकृति पुत्र है, उसकीब जिन्दगी का आधार नैसर्गिक वस्तुएँ हैं जिनकी गुणवत्ता बनाए रखना मानव मात्र का परम कर्तव्य है। हमारी भूल का प्रतिफल प्रदूषण, दैविय प्रकोप और सांस्कृतिक समस्याओं के रूप में प्रकट होने लगा है। कछु संकट तो मानव अस्तित्व के लिए

प्रश्न चिन्ह बनते जा रहे हैं। ग्रीन हाउस प्रभाव और ओजोन क्षरण ऐसे ही संकट हैं जो संपूर्ण जीव जगत को निवाला बनाने पर अमादा है। आज जब पर्यावरण संतुलन लगभग बिगड़ चुका हैं तब नादान् मनुष्य संताप करने बैठा है। उसे क्या पता था कि वनों की लकड़ी काटते–काटते वह अपनी किस्मत पर भी कुल्हाड़ी चला रहा है। उसे क्या पता था कि कारखानों का दूषित जल नदियों और समुद्र में डालकर वह न केवल मछलियों और जल जंतुओं का ही जीवन समाप्त कर रहा है अपितु अपनी जीवन रेखा को भी छोटी करता जा रहा है। वायुमंडल को कार्बन डाई–ऑक्साइड से भरकर हवा की ताजगी को ही नष्ट कर रहा है। पर्यावरण की महत्ता अब मनुष्य की समझ में आई है और इसी महत्ता का दूसरा नाम है 'पर्यावरण शिक्षा'। मनुष्य और प्रकृति के सह–संबंधों को सही दिशा में विकसित करना ही पर्यावरण शिक्षा का अभीष्ट है।

पर्यावरण शिक्षा प्राचीन भारतीय शिक्षा संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है। भारतवर्ष में प्रकृति और मनुष्य के बीच संतुलन सदियों–सहस्राब्दियों पुराना है। यहॉ मनुष्य और प्रकृति के बीच एक मीठा सा सह–संबंध रहा है। न तो मनुष्य ने प्रकृति के सौदंर्य के साथ छेड़छाड़ की आरै न ही उसे लूटने की तजबीज ही बिठाई, दूसरी तरफ प्रकृति ने भी दिल खोलकर उसे अपना प्यार, दुलार, ममता, सब कछु दिया।

भारत में पर्यावरण संरक्षण की परंपरा प्रारम्भ से ही रही है। हमारी संस्कृति में प्रकृति को देवी और देवता के रूप में स्वीकार किया गया है। आज भी भारत में बरगद, पीपल, ऑवला, तुलसी और नीम के वृक्षों की पूजा की जाती है। केले और आम के पत्तों को महत्व दिए बिना विवाह संस्कार तक शुभ नहीं समझे जाते हैं। यहॉ जलीय जीवों को चारा चुगाया जाता है तथा जीव–जन्तु हमारे उपासना के पात्र हैं। जहॉ शेर, मॉ दुर्गे का वाहन है तो वहीं हंस मॉ सरस्वती और उल्लू मॉ लक्ष्मी के वाहन के रूप में सुशोभित हैं। वेद, जिन्हें अरण्यक कहते हैं। इनकी रचना वनों में ही हुई थी। ये वनों में गाए गए गीत हैं। ऋषि–मुनियों ने वनों में ही तपस्या की थी। यज्ञ–हवन द्वारा वायु तथा वातावरण की शुद्धि करना भारतीय मनीषियों की दैनिक दिनचर्या में शामिल था। नदियॉ और पहाड़ हमारे आध्यात्मिक आस्था के केन्द्र बिन्दु हैं। यों तो संसार में और भी कई दर्शन हैं, लेकिन वह भारतीय दर्शन ही है, जो सदा से प्रकृति के साथ आत्मीय संवाद का पक्षधर रहा है। विकास के नाम पर पर्यावरण असंतुलन का पक्षधर वह कभी नहीं रहा। आत्मीय संवाद से सृजनात्मकता आती है। सृजनात्मकता चरित्र को उज्वल बनाती है और सच्चरित्र मनुष्य किसी का भी संहार या विनाश नहीं कर सकता, हमारे वेद इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। भारतीय दार्शनिक परंपरा जनमानस में इस चेतना का संचार करता है कि उन्हें प्रकृति के साहचर्य में ही सुख मिल सकता है, अन्यत्र नहीं। मौन घाटी की शांति को बचाने के लिए केरल वासियों ने जो संघर्ष किया वह इसी भारतीय दर्शन की विचारधारा का

परिणाम था। उत्तराखण्ड के सुसंस्कृत लेकिन गरीब लोगों ने जिस प्रकार 'चिपको आंदोलन' चलाया वह भी पकृति के साथ तादात्म्य की एक आधुनिक कथा है, जिसका पारायण हर प्रकृति प्रेमी करना चाहता है। प्रकृति की गोद में जन्मी, पली–बढ़ी भारतीय दार्शनिक परंपरा हमें जीवन के उस परमानंद की आरे ले जाती है जो ''सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया'' की पावन भावना से सराबोर है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1. श्रीवास्तव, वी0के0, (2001), ''पर्यावरण और पारिस्थितिकी'', गोरखपुर वसुन्धरा प्रकाशन।
2. पाण्डेय, आर0एस0, (2003), ''भारतीय शिक्षा की समसामायिक समस्याएँ'', आगरा–2, विनोद पुस्तक मंदिर।
3. पाण्डेय, प्रो0 पिवजय कुमार, (2003), ''भारतीय संस्कृति और कला'', इलाहाबाद, साहित्य संगम।
4. शर्मा, एच.एल. (2003), ''पर्यावरण के समसामयिक आयाम'', राज पब्लिशिंग हाउस।